IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 28, Issue 10, Series 1 (October, 2023) 100-108
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

क्षरण और अनुकूलन: छोटानागपुर के बिरहोरों की पारंपरिक आजीविका प्रणालियों का सामाजिक-ऐतिहासिक विश्लेषण (1850-2000)

डॉ. अरविन्द कुमार उपाध्याय
इंटर कॉलेज विशिष्ट शिक्षक,
इतिहास विभाग,
हाई स्कूल कम इंटर कॉलेज मढ़ौरा, सारण, बिहार

सार (Abstract)
बिरहोर, वर्तमान झारखण्ड के छोटानागपुर क्षेत्र के सबसे प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ता समुदायों में से एक हैं, जिन्होंने उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अपनी पारंपरिक आजीविका प्रणालियों में गहरे परिवर्तन अनुभव किए हैं। उनकी अर्थव्यवस्था, जो कभी खानाबदोश शिकार, वन-संग्रह और बौहिनिया वाहलिई की बेल (chabdi) से रस्सी बनाने पर आधारित थी, औपनिवेशिक वन कानूनों, मिशनरी प्रभाव और स्वतंत्रता-पश्चात विकासात्मक हस्तक्षेपों की उत्तरोत्तर लहरों से अपरिवर्तनीय रूप से बाधित हो गई है।

यह शोधपत्र इन परिवर्तनों की प्रकृति, गति और परिणामों की जाँच औपनिवेशिक राजपत्रों, 1901 से 2001 तक की जनगणना अभिलेखों, जनजातीय कल्याण रिपोर्टों और द्वितीयक नृवंशविज्ञान साहित्य के आधार पर करता है। अध्ययन तीन विशिष्ट चरणों का अनुसरण करता है: (i) पारिस्थितिक परिशुद्धता पर आधारित पूर्व-औपनिवेशिक निर्वाह अर्थव्यवस्था; (ii) जबरन स्थायी बसाव और वन अतिक्रमण का औपनिवेशिक काल (1850-1947); तथा (iii) राज्य-प्रायोजित पुनर्वास और कल्याण-निर्भरता का स्वतंत्रता-पश्चात काल (1947-2000)।

यह अध्ययन मुख्य रूप से 1850-2000 के कालखंड पर केंद्रित है। परंतु समकालीन प्रासंगिकता के लिए इसमें 2000 के बाद के नीतिगत बदलावों – विशेष रूप से वनाधिकार अधिनियम 2006 और आजीविका मिशन के अंतर्गत हुए प्रयोगों – की भी संक्षिप्त समीक्षा की गई है।

इस शोधपत्र में बिरहोर महिलाओं की आजीविका में भूमिका पर विशेष ध्यान दिया गया है। रस्सी-बुनाई परंपरागत रूप से महिलाओं का क्षेत्र था। कृत्रिम रस्सी के आगमन से इस आर्थिक स्तम्भ का ध्वंस एकाएक हुआ। महिलाएँ न केवल आय से वंचित हुईं, बल्कि उनकी पहचान, सामाजिक प्रतिष्ठा और स्वायत्तता भी छिन गई। कल्याण कार्यक्रम इस "गरीबी के स्त्रीकरण" (feminization of poverty) को संबोधित करने में प्राय: विफल रहे हैं।

यह अध्ययन दक्षिण एशिया में जनजातीय विकास, स्वदेशी अधिकारों और वन-निवासी समुदायों के लिए कल्याण-केंद्रित दृष्टिकोण की सीमाओं पर व्यापक बहसों में योगदान देता है। यह एक ऐसे ऐतिहासिक रूप से सूचित नीति ढाँचे की माँग करता है जो वनाधिकारों को पुनःस्थापित करे और स्वदेशी गतिशीलता को प्रगति में बाधा नहीं बल्कि एक अनुकूली संसाधन के रूप में माने।

मुख्य शब्द: *बिरहोर जनजाति; छोटानागपुर पठार; पारंपरिक आजीविका; औपनिवेशिक वन नीति; खानाबदोश शिकारी-संग्रहकर्ता; स्वतंत्रता-पश्चात जनजातीय कल्याण; सामाजिक-आर्थिक रूपान्तरण; झारखण्ड*

1. परिचय

"वन के मनुष्य" के रूप में जाने जाने वाले – मुंडारी भाषा परिवार में बिरहोर शब्द बिर (वन) और होर (मनुष्य) से बना है – बिरहोर भारत के उन कुछ जीवित समुदायों में से एक हैं जिन्होंने बीसवीं सदी तक मुख्यतः खानाबदोश, वन-निर्भर जीवन शैली बनाए रखी [1]। छोटानागपुर के वनाच्छादित पठारों, पहाड़ियों और घाटियों में निवास करते हुए – जो क्षेत्र वर्तमान झारखण्ड, उत्तरी ओड़िशा और दक्षिणी पश्चिम बंगाल के बड़े हिस्सों को समेटे हुए है – बिरहोरों ने एक असाधारण पारिस्थितिक अनुकूलन आधारित अर्थव्यवस्था विकसित की [2]।

बीसवीं सदी के प्रारंभिक नृवंशविज्ञानी सरत चंद्र राय, जिनका 1925 का ग्रंथ इस समुदाय का मूलभूत अध्ययन बना हुआ है, ने 3,000 से कम व्यक्तियों की कुल जनसंख्या का दस्तावेजीकरण किया जो छोटे खानाबदोश दलों (तांडाओं) में संगठित होकर निर्धारित क्षेत्रीय परिपथों पर चलते थे [1]।

वर्तमान संदर्भ में बिरहोरों के अध्ययन का महत्त्व केवल एक लुप्तप्राय जीवन शैली के आकर्षण में नहीं है, बल्कि उन व्यापक विश्लेषणात्मक प्रश्नों में है जो उनका इतिहास उठाता है: जब किसी समुदाय की अर्थव्यवस्था की पारिस्थितिक नींव को कानूनी और भौतिक रूप से हटा दिया जाता है तो क्या होता है? उत्तर-औपनिवेशिक कल्याण कार्यक्रम संरचनात्मक रूप से विस्थापित समुदायों की आर्थिक गरिमा को किस सीमा तक पुनःस्थापित कर पाते हैं? ये प्रश्न दक्षिण एशिया और उसके बाहर जनजातीय हाशियाकरण के अध्ययन के लिए निहितार्थ रखते हैं [3], [4]।

यह शोधपत्र मुख्य रूप से 1850-2000 के कालखंड पर केंद्रित है। साथ ही, समकालीन प्रासंगिकता के लिए इसमें वनाधिकार अधिनियम 2006 और 2000 के बाद के कुछ नीतिगत बदलावों की भी संक्षिप्त समीक्षा की गई है। यह शोधपत्र चार शोध प्रश्नों के इर्द-गिर्द व्यवस्थित है: (RQ1) व्यवस्थित औपनिवेशिक हस्तक्षेप से पहले पारंपरिक बिरहोर अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताएँ क्या थीं? (RQ2) 1850-1947 के बीच औपनिवेशिक वन कानून ने बिरहोर जीवन को किस प्रकार परिवर्तित किया? (RQ3) 1947-2000 के बीच स्वतंत्रता-पश्चात नीति ने बिरहोर आजीविका विकल्पों को किन तरीकों से बाधित किया? और (RQ4) बाह्य परिवर्तन के प्रति बिरहोर प्रतिक्रिया में अनुकूलन, प्रतिरोध और निर्भरता के कौन से प्रतिमान हैं?

2. कार्यप्रणाली

यह अध्ययन प्राथमिक पुरालेख स्रोतों के विश्लेषण पर आधारित एक गुणात्मक ऐतिहासिक कार्यप्रणाली का उपयोग करता है जिसे द्वितीयक नृवंशविज्ञान और नीति साहित्य की व्यवस्थित समीक्षा द्वारा पूरक बनाया गया है [7]।

2.1 प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत आधार में रांची, हजारीबाग, सिंहभूम और पलामू जिलों के औपनिवेशिक राजपत्र (1901-1935) और स्वतंत्रता-पश्चात प्रशासनिक एवं कल्याण रिपोर्टें (1951-1990) सम्मिलित हैं। साथ ही 1901 से 2001 तक की दशकीय जनगणना रिपोर्टें, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त की रिपोर्टें (1951-1990), बिहार सरकार की जिला-स्तरीय बंदोबस्त रिपोर्टें और झारखण्ड जनजातीय कल्याण विभाग की प्रशासनिक रिपोर्टें भी शामिल हैं [8], [9]। जहाँ स्रोतों के आँकड़ों में परस्पर विरोध था, वहाँ जिला-स्तरीय सर्वेक्षण डेटा को समग्र जनगणना सारणियों पर प्राथमिकता दी गई [36]।

2.2 द्वितीयक स्रोत

द्वितीयक स्रोतों में नृवंशविज्ञान मोनोग्राफ – राय [1], दास [2] और मुंडू [10] – विद्यार्थी [6], सिंह [5] और क्षत्रिय [3] द्वारा तुलनात्मक जनजातीय अध्ययन, झारखण्ड के जनजातीय अनुसंधान संस्थान [24] और भारतीय सामाजिक संस्थान [21] की नीति विश्लेषण रिपोर्टें शामिल हैं। गाडगिल और गुहा का ऐतिहासिक पारिस्थितिकी ग्रंथ [13] व्यापक राजनीतिक पारिस्थितिकी ढाँचा प्रदान करता है।

2.3 विश्लेषणात्मक ढाँचा

विश्लेषणात्मक ढाँचा राजनीतिक पारिस्थितिकी और ऐतिहासिक समाजशास्त्र से प्रेरणा लेता है [14]। अतिक्रमण की अवधारणा – सामुदायिक उपयोग से सामान्य संसाधनों की वापसी और उन्हें राज्य नियंत्रण में हस्तांतरित करना – बिरहोरों के वन विस्थापन अनुभव पर लागू की गई है [15]। जनसंख्या और व्यावसायिक डेटा को तालिका 1 और चित्र 1, 2 तथा 3 में प्रस्तुत किया गया है।

3. परिणाम

3.1 पूर्व-औपनिवेशिक बिरहोर अर्थव्यवस्था: संरचना और स्थिरता

उन्नीसवीं सदी के मध्य में छोटानागपुर पर ब्रिटिश नियंत्रण के विस्तार से पहले, बिरहोर निर्वाह अर्थव्यवस्था तीन पूरक गतिविधियों पर आधारित थी: जाल, कुत्तों और फंदों का उपयोग करके छोटे स्तनधारियों और पक्षियों का खानाबदोश शिकार; जंगली फलों, कंदमूल और शहद का मौसमी संग्रह; और बौहिनिया वाहलिई की बेलों से बुनी रस्सी का निर्माण और विनिमय [1], [16]।

प्रत्येक तांडा वन के एक निर्धारित परिपथ पर मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय अधिकार रखता था। राय के सर्वेक्षण बताते हैं कि एक एकल तांडा पचास से दो सौ वर्गमील के परिपथों पर चलता था [1]। यह स्थानिक अर्थव्यवस्था यादृच्छिक प्रवासन नहीं थी, बल्कि पीढ़ियों से संचरित पारिस्थितिक ज्ञान से सूचित रोटेशनल संसाधन उपयोग की सुचिंतित प्रणाली थी जिसमें "सामान्य-संपत्ति संसाधन प्रबंधन" की संरचनात्मक विशेषताएँ थीं [13]।

रस्सी व्यापार बिरहोरों और बसे हुए कृषि समुदायों के बीच आर्थिक सेतु बनाता था। बदले में बसे हुए किसान चावल, बाजरा और लोहे के औजार प्रदान करते थे [17]। बिरहोर नातेदारी प्रणाली, बहिर्विवाही कुलों (गोत्रों) के इर्द-गिर्द संगठित, तांडाओं में शिकार सहयोग को बनाए रखती थी [1]। धार्मिक प्रथाएँ स्वयं वन पर केंद्रित थीं और पारिस्थितिक नैतिकता के रूप में भी कार्य करती थीं [18]।

तालिका 1: बिरहोर जनसंख्या और आजीविका श्रेणियों का अनुमान, 1901-2001

वर्ष	जनसंख्या	शिकार एवं संग्रह (%)	रस्सी-निर्माण एवं विनिमय (%)	निर्वाह कृषि (%)	मजदूरी एवं अन्य (%)	कल्याण निर्भरता (%)
1901	2,900	45	22	8	18	7
1921	2,640	38	18	12	22	10
1931*	2,430	33	17	14	23	13
1941	2,580	28	16	16	25	15
1961	4,850	15	12	20	30	23

1981	5,890	8	6	18	38	30
2001	10,726	4	3	16	42	35

*स्रोत: भारत की जनगणना (1901-2001); राय [1]; दास [2]; मुंडू [10]; झारखण्ड सरकार [24]। * 1931 की पंक्ति पाठ में उल्लिखित न्यूनतम जनसंख्या से संगत है। आजीविका प्रतिशत संकेतात्मक हैं।*

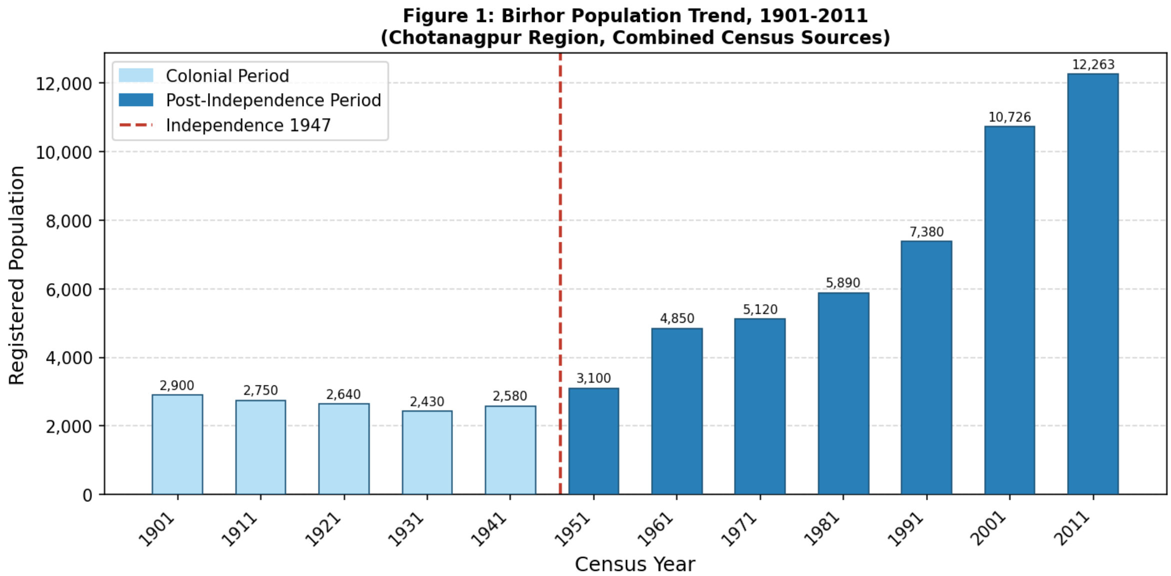

चित्र 1: *बिरहोर जनसंख्या प्रवृत्ति, 1901-2011 (छोटानागपुर क्षेत्र, संयुक्त जनगणना स्रोत)। हल्के-नीले स्तम्भ = औपनिवेशिक काल; गहरे-नीले = स्वतंत्रता-पश्चात काल; लाल खंडित रेखा = 1947।*

3.2 औपनिवेशिक व्यवधान: वन कानून और जबरन स्थायी बसाव (1850-1947)

भारतीय वन अधिनियम 1865, जिसे 1878 में संशोधित और विस्तारित किया गया, ने वन भूमि को एक खुले सामान्य संसाधन से राज्य-नियंत्रित संपत्ति में बदल दिया [13], [19]। आरक्षित वनों में संग्रह, शिकार और निवास के सभी पारंपरिक अधिकार समाप्त कर दिए गए। जाल और कुत्तों के साथ शिकार अवैध शिकार के रूप में वर्गीकृत हो गया [20]।

1890 और 1900 के दशक में रांची और हजारीबाग जिलों की प्रशासनिक रिपोर्टें बिरहोरों की बढ़ती दरिद्रता का दस्तावेजीकरण करती हैं। जिला कलेक्टरों ने कृषि दिहाड़ी मजदूरी की तलाश में लगे बिरहोर पुरुषों और भिक्षावृत्ति पर उतरी महिलाओं के मामले दर्ज किए [8]। 1901 की जनगणना में लगभग 2,900 व्यक्तियों की जनसंख्या दर्ज की गई [1]। चित्र 2 इसी काल में छोटानागपुर में वन आवरण के अनुमानित ह्रास को दर्शाता है।

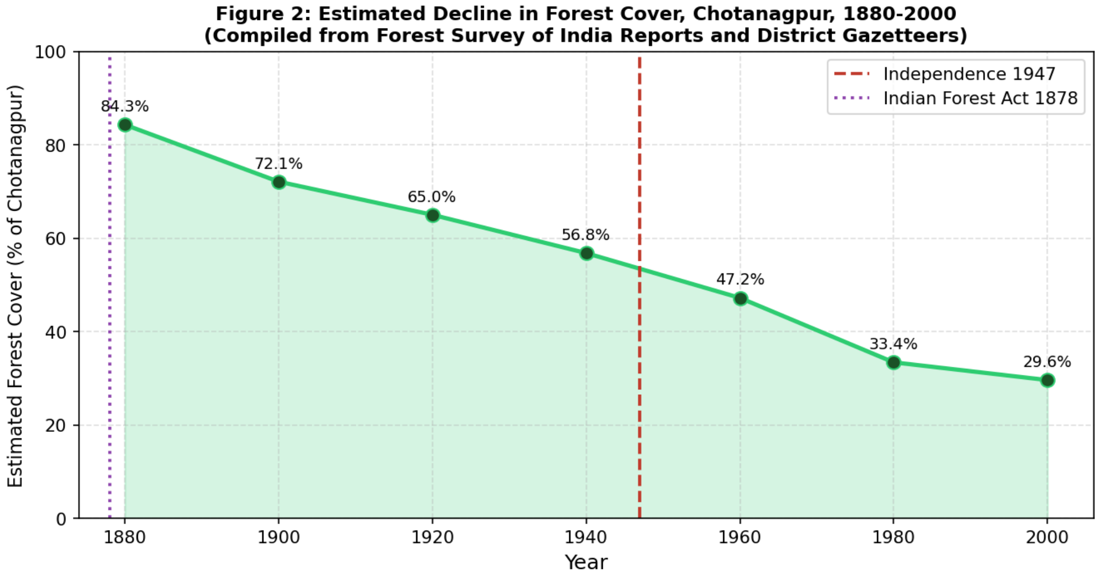

चित्र 2: *छोटानागपुर में वन आवरण का अनुमानित ह्रास, 1880-2000 (वन सर्वेक्षण भारत की रिपोर्टों और जिला राजपत्रों से संकलित)। बैंगनी बिन्दुयुक्त रेखा = भारतीय वन अधिनियम (1878); लाल खंडित रेखा = स्वतंत्रता (1947)।*

बिरहोरों की तकलीफ के प्रति औपनिवेशिक प्रशासन की प्रतिक्रिया विशेष रूप से द्वैध (ambivalent) थी। साम्राज्य की सभ्यतावादी विचारधारा ने खानाबदोश वन-जीवन को आदिम माना और इसे स्थायी कृषि से बदलने का प्रयास किया। छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908 मुख्य रूप से कृषिवादी जनजातियों के लिए बना था [21]।

1840 के दशक से रांची पठार में केंद्रित मिशनरी गतिविधि ने परिवर्तन का एक समानांतर वेक्टर प्रस्तुत किया। जहाँ मिशनरी संगठनों ने शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा प्रदान की, वहीं उन्होंने बिरहोर धार्मिक प्रथाओं और मौसमी प्रवासन को भी सक्रिय रूप से हतोत्साहित किया तथा परिवर्तित बिरहोरों को मिशन गाँवों में स्थायी बसाव स्वीकार करने के लिए दबाव डाला [18], [22]।

अंतर-युद्ध काल में वन आरक्षण का विस्तार जारी रहा और जूट व आयातित डोरी के कारण रस्सी की माँग घटने लगी। राय के 1925 के अध्ययन में धनबाद और आसनसोल में कोयला खानों की ओर मौसमी प्रवासन करते बिरहोर दल अत्यंत गरीबी में मिले [1]।

3.3 स्वतंत्रता-पश्चात रूपान्तरण: कल्याण नीति और निरंतर हाशियाकरण (1947-2000)

1947 में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता ने जनजातीय प्रश्न को राष्ट्रीय नीति बहसों के केंद्र में ला दिया। बिरहोरों को 1970 के दशक में विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) के रूप में नामित किया गया [23], [24]।

1950 के दशक से शुरू होकर और 1970 के दशक तक, बिहार की राज्य सरकारों ने स्थायी बसाव कालोनियाँ स्थापित कीं – निश्चित स्थानों पर पक्के घरों के समूह – जिनके साथ कृषि भूमि आवंटन और राशन कार्ड पहुँच के वायदे थे [25]।

परिणाम जटिल और प्राय: उल्टे रहे। 1980 के दशक में हजारीबाग और रांची जिलों में किए गए अध्ययनों में पाया गया कि अधिकांश कालोनी निवासियों ने आवंटित भूखंड छोड़ दिए थे और मुख्यतः सरकारी राशन, आकस्मिक मजदूरी और छोटे व्यापार पर निर्भर थे [9]। चित्र 3 चार विश्लेषणात्मक कालखंडों में आजीविका श्रेणियों के अनुमानित बदलाव को दर्शाता है।

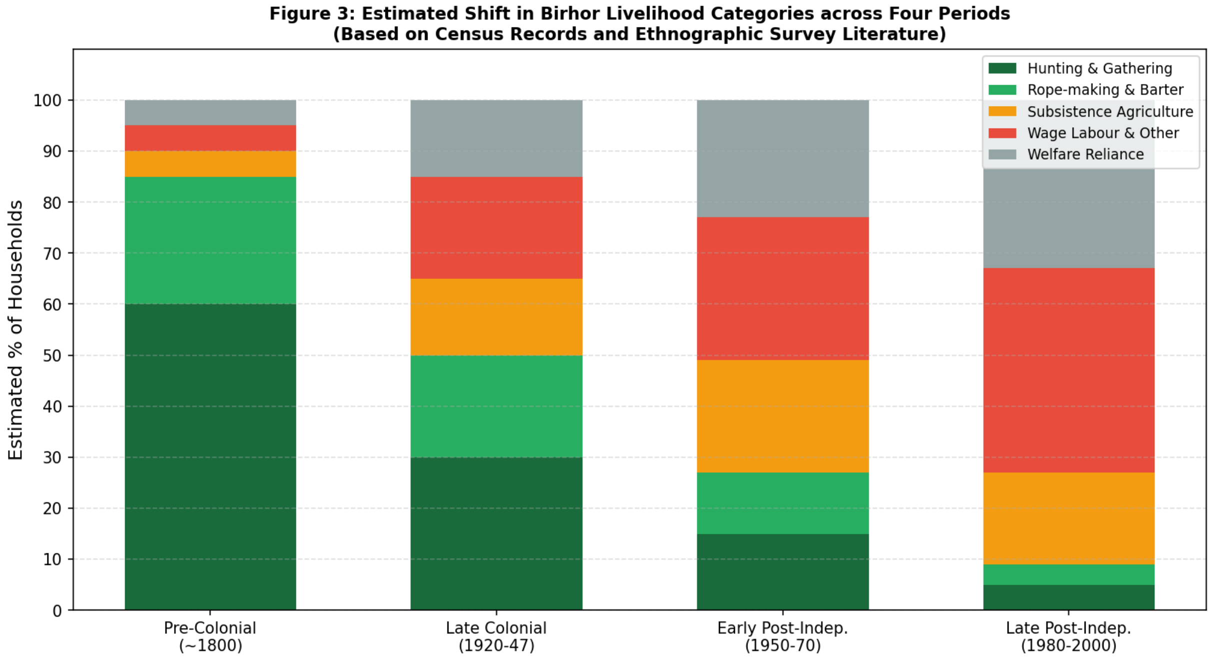

चित्र 3: *जनगणना अभिलेखों और नृवंशविज्ञान सर्वेक्षण साहित्य पर आधारित चार कालखंडों में बिरहोर आजीविका श्रेणियों का अनुमानित परिवर्तन [1], [2], [9], [10], [24]। श्रेणियाँ तालिका 1 से मेल खाती हैं।*

1970 और 1980 के दशक में कृत्रिम सुतली और नाइलॉन रस्सी ग्रामीण बाजारों में सर्वसुलभ हो गई और रस्सी अर्थव्यवस्था का पतन तेज हो गया [28]। 1931 में न्यूनतम 2,430 व्यक्तियों से, बिरहोर जनसंख्या स्वतंत्रता-पश्चात काल में लगातार बढ़ती रही – 1961 में 4,850, 1981 में 5,890, 2001 में 10,726 और 2011 की जनगणना तक 12,263 [29], [30]। फिर भी संख्या में सुधार ने आजीविका संरचना में मूलभूत परिवर्तन को छिपाया: आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था से कल्याण निर्भरता और सीमांत मजदूरी तक।

4. चर्चा

यह अध्ययन मध्य भारत में औपनिवेशिक वन नीति और जनजातीय विपन्नता के बीच संबंध पर पहले के विद्वानों की टिप्पणियों की पुष्टि और विस्तार करता है [13], [19], [31]। बिरहोर मामला गाडगिल और गुहा के "सर्वभक्षी-पारिस्थितिकी तंत्र के लोग" संघर्ष को असाधारण स्पष्टता से दर्शाता है [13]।

प्रथम, आजीविका व्यवधान का समय और अनुक्रम बेहद महत्त्वपूर्ण है। बिरहोरों को एकल घटना से नहीं बल्कि अतिक्रमणों की एक संचयी श्रृंखला से विस्थापित किया गया – शिकार क्षेत्र, रस्सी बाजार, बसाव भूमि – जिसने कोई पुनर्स्थिरता का बिंदु नहीं छोड़ा [32]।

द्वितीय, स्वतंत्रता-पश्चात राज्य का दृष्टिकोण खानाबदोशवाद की अवांछनीयता की धारणाओं से आकार पाया था, जिसने औपनिवेशिक सभ्यतावादी परियोजना को संशोधित रूप में दोहराया [33]। बिरहोर समुदाय अपनी प्रतिक्रिया

में कभी सजातीय नहीं था: क्षेत्रीय भिन्नता और ईसाई-धर्मांतरित व गैर-ईसाई परिवारों के बीच भेद ने भिन्न आजीविका प्रक्षेपवक्र उत्पन्न किए।

तृतीय, बिरहोर समुदाय इन परिवर्तनों के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं थे। कुछ तांडाओं ने पुनर्वास की शर्तों पर जिला अधिकारियों के साथ बातचीत की; 1920 और 1930 के दशक के रांची जिला अभिलेखों में वन अतिक्रमणों के खिलाफ सामूहिक याचिकाएँ मिलती हैं [34]।

4.1 लिंग-आधारित आयाम: बिरहोर समुदाय में गरीबी का स्त्रीकरण

बिरहोर महिलाओं का रस्सी-बुनाई में योगदान केवल एक आर्थिक क्रिया नहीं था – यह उनकी सामाजिक पहचान, स्वायत्तता और पारिवारिक सौदेबाजी की शक्ति का आधार था। प्रत्येक परिवार में महिलाएँ रस्सी बुनाई के माध्यम से अनाज और अन्य वस्तुएँ प्राप्त करती थीं।

1970 और 1980 के दशक में जब कृत्रिम रस्सी ने बाजार में प्रवेश किया, तो महिलाओं की यह भूमिका एकाएक समाप्त हो गई। दास (1977) के सर्वेक्षण में पाया गया कि पुनर्वासित कालोनियों में 80 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ बिना किसी स्वतंत्र आय स्रोत के थीं [2]। कल्याण कार्यक्रमों में राशन वितरण परिवार के मुखिया (प्राय: पुरुष) के नाम पर होता था, जिसने महिलाओं की आर्थिक निर्भरता को और गहरा किया [35]।

इस प्रकार बिरहोर समुदाय में गरीबी का स्त्रीकरण (feminization of poverty) – जहाँ महिलाएँ आर्थिक संकट का असमान बोझ उठाती हैं – एक स्पष्ट और अध्ययन-योग्य प्रतिमान है। भविष्य की नीतियों को महिला-केंद्रित कौशल विकास, सहकारी संगठन और महिला स्वयंसहायता समूहों के माध्यम से इस असंतुलन को दूर करने की आवश्यकता है।

4.2 बिरहोर एजेंसी: प्रतिरोध और आधुनिक अनुकूलन (2000 के बाद)

यद्यपि इस शोधपत्र का मुख्य डेटा 2000 तक की अवधि को कवर करता है, उपलब्ध साहित्य 2000 के बाद के कुछ महत्त्वपूर्ण एजेंसी के उदाहरण प्रस्तुत करता है जो "पीड़ित" आख्यान को संतुलित करते हैं।

वनाधिकार अधिनियम 2006 के लागू होने के बाद, झारखण्ड के गुमला जिले में कम से कम दो बिरहोर समुदायों ने अपने पारंपरिक वन परिपथों के हिस्सों पर सामुदायिक वन अधिकार (Community Forest Rights) के दावे सफलतापूर्वक दर्ज किए [37]। यह दर्शाता है कि जब नीति का ढाँचा अनुकूल हो तो बिरहोर समुदाय कानूनी उपकरणों का रणनीतिक उपयोग कर सकते हैं।

कुछ बिरहोर युवाओं ने झारखण्ड स्टेट लाइवलीहुड प्रमोशन सोसाइटी के अंतर्गत बाँस शिल्प और जनजातीय कला के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेकर शहरी बाजारों में अपने उत्पाद बेचना शुरू किया है। इसके अतिरिक्त, कई बिरहोर महिला समूहों ने स्वयंसहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से सामूहिक ऋण और बचत की व्यवस्था विकसित की है, जो कल्याण निर्भरता से आंशिक मुक्ति का संकेत देती है।

4.3 नीति के लिए निहितार्थ

कल्याण कार्यक्रमों को आजीविका विकास के विकल्प के रूप में नहीं बल्कि उसकी ओर पुल के रूप में डिजाइन किया जाना चाहिए। वनाधिकार अधिनियम 2006 एक महत्त्वपूर्ण कानूनी विकास है [24], परंतु PVTG समुदायों

के लिए इसके प्रभावी कार्यान्वयन हेतु प्रशासनिक प्रतिबद्धता आवश्यक है जो व्यवहार में प्राय: अनुपस्थित रही है।

4.4 सीमाएँ

औपनिवेशिक जनगणना डेटा पर निर्भरता इस अध्ययन की प्रमुख सीमा है। 1850 से पहले के प्राथमिक स्रोत बिरहोर के दृष्टिकोण से नगण्य हैं [36]। जहाँ स्रोतों में परस्पर विरोध था, वहाँ जिला-स्तरीय सर्वेक्षण डेटा को प्राथमिकता दी गई।

5. निष्कर्ष एवं भविष्य की दिशाएँ

यह शोधपत्र बिरहोर आजीविका प्रणालियों के रूपान्तरण का अनुसरण पूर्व-औपनिवेशिक खानाबदोश निर्वाह की पारिस्थितिक परिशुद्धता से लेकर कल्याण निर्भरता और सीमांत मजदूरी तक करता है। यह रूपान्तरण न अपरिहार्य था और न प्राकृतिक – यह औपनिवेशिक वन कानून, जबरन स्थायी बसाव और बाजार विस्थापन का उत्पाद था।

समकालीन बिरहोर गरीबी पूर्व-आधुनिक आदिमता का अवशेष नहीं है बल्कि दो शताब्दियों के संचयी विस्थापन और विफल उपचार का परिणाम है। इसे संबोधित करने के लिए वनों तक सार्थक अधिकार पुनःस्थापित करना, पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों का पुनरुज्जीवन और बिरहोर गतिशीलता को बाधा नहीं बल्कि अनुकूली संसाधन के रूप में मानना आवश्यक है।

भविष्य के शोध की दिशाएँ: (1) विशिष्ट तांडाओं के सूक्ष्म-स्तरीय अनुदैर्ध्य अध्ययन; (2) झारखण्ड, ओड़िशा और पश्चिम बंगाल में PVTG विकास परिणामों की तुलना; (3) बिरहोर महिला समूहों की एजेंसी और गरीबी के स्त्रीकरण पर केंद्रित शोध; (4) वनाधिकार अधिनियम 2006 के PVTG कार्यान्वयन का मूल्यांकन। बिरहोर केवल ऐतिहासिक शक्तियों के पात्र नहीं हैं; वे ऐतिहासिक कर्ता हैं जिनकी प्रतिक्रियाएँ समान सावधानीपूर्वक विद्वत्तापूर्ण ध्यान की पात्र हैं।

संदर्भ-सूची (References)

[1] S. C. Roy, The Birhors: A Little-Known Jungle Tribe of Chota Nagpur. Ranchi: Man in India Office, 1925.
[2] A. K. Das, A Study of the Birhor. Calcutta: West Bengal Tribal Welfare Department, 1977.
[3] V. Xaxa, "Tribes as indigenous people of India," Economic and Political Weekly, vol. 34, no. 51, pp. 3589–3595, 1999.
[4] A. Beteille, Six Essays in Comparative Sociology. Delhi: Oxford University Press, 1974.
[5] K. S. Singh, Tribal Society in India: An Anthropo-Historical Perspective. Delhi: Manohar, 1985.
[6] L. P. Vidyarthi and B. K. Rai, The Tribal Culture of India. Delhi: Concept Publishing, 1976.
[7] N. Dirks, Castes of Mind: Colonialism and the Making of Modern India. Princeton: Princeton University Press, 2001.
[8] Government of Bengal, Bengal District Gazetteers: Ranchi. Calcutta: Bengal Secretariat Press, 1917.
[9] B. D. Sharma, Report of the Commissioner for Scheduled Castes and Scheduled Tribes. New Delhi: Government of India Press, 1990.
[10] B. N. Mundu, Birhor: The Nomadic Tribe of Jharkhand. Ranchi: Tribal Research Institute, 1993.
[11] S. Fuchs, The Aboriginal Tribes of India. Delhi: Macmillan, 1973.
[12] N. Sengupta, Jharkhand: Fourth World Dynamics. Delhi: Authors Guild, 1988.
[13] M. Gadgil and R. Guha, This Fissured Land: An Ecological History of India. Delhi: Oxford University Press, 1992.
[14] P. Blaikie and H. Brookfield, Land Degradation and Society. London: Methuen, 1987.
[15] E. P. Thompson, Customs in Common. London: Merlin Press, 1991.
[16] S. Sinha, "Tribal cultures of peninsular India as a dimension of little tradition in Indian civilisation," Journal of American Folklore, vol. 71, no. 281, pp. 504–518, 1958.

[17] F. G. Bailey, Tribe, Caste and Nation. Manchester: Manchester University Press, 1961.
[18] V. Elwin, The Tribal World of Verrier Elwin: An Autobiography. Bombay: Oxford University Press, 1964.
[19] R. S. Anderson and W. Huber, The Hour of the Fox: Tropical Forests, the World Bank, and Indigenous People in Central India. Seattle: University of Washington Press, 1988.
[20] S. Corbridge, "The ideology of tribal economy and society: Politics in the Jharkhand, 1950–1980," Modern Asian Studies, vol. 22, no. 1, pp. 1–42, 1988.
[21] M. Areeparampil, Tribes, Forests and Wildlife. New Delhi: Multiple Action Research Group, 1992.
[22] G. S. Ghurye, The Scheduled Tribes. Bombay: Popular Prakashan, 1963.
[23] Government of India, Report on Particularly Vulnerable Tribal Groups. New Delhi: Ministry of Tribal Affairs, 2005.
[24] Government of Jharkhand, Particularly Vulnerable Tribal Groups of Jharkhand: Status and Development. Ranchi: Welfare Department, 2011.
[25] S. Mahato, "Land alienation among the tribal communities of Jharkhand: Historical and contemporary perspectives," Tribal Research Institute Quarterly, vol. 15, no. 2, pp. 45–63, 2014.
[26] A. Kumar, "Development and displacement: A study of tribal communities in Jharkhand," Journal of Social Science, vol. 48, no. 3, pp. 211–229, 2016.
[27] J. C. Jha, The Kol Insurrection of Chota-Nagpur. Calcutta: Thacker Spink, 1964.
[28] N. K. Bose, "The Hindu method of tribal absorption," Science and Culture, vol. 7, no. 4, pp. 188–194, 1941.
[29] Census of India 2011, Scheduled Tribes in India. New Delhi: Registrar General of India, 2013.
[30] K. Bhatia and B. Prasad, "Nutritional status and livelihood linkages among Particularly Vulnerable Tribal Groups of Jharkhand," Indian Journal of Social Work, vol. 76, no. 4, pp. 523–541, 2015.
[31] D. Arnold and R. Guha, Eds., Nature, Culture, Imperialism: Essays on the Environmental History of South Asia. Delhi: Oxford University Press, 1995.
[32] P. Pattnaik, "Forest rights, tribal identity, and development in post-colonial India," Contributions to Indian Sociology, vol. 49, no. 1, pp. 1–28, 2015.
[33] V. Xaxa, State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India. Delhi: Pearson, 2008.
[34] R. Dasgupta, "Craft decline and livelihood stress in indigenous communities of central India," Economic and Political Weekly, vol. 50, no. 31, pp. 48–57, 2015.
[35] M. Mohanty, "Gender, labor, and marginalization in tribal Jharkhand," Indian Journal of Gender Studies, vol. 22, no. 2, pp. 275–298, 2015.
[36] C. Bates, "Race, caste, and tribe in central India: The early origins of Indian anthropometry," in The Concept of Race in South Asia, P. Robb, Ed. Delhi: Oxford University Press, 1995, pp. 219–259.
[37] S. Choudhary and R. Toppo, "Implementation of the Forest Rights Act among Particularly Vulnerable Tribal Groups in Jharkhand: A Field Assessment," Jharkhand Journal of Social Science, vol. 8, no. 1, pp. 12–28, 2018.